4

व्याकरणदर्शन की परम्परा एवं मण्डनमिश्र

शशिकान्त मिश्र
शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय
Email : shashikantmishra849@gmail.com

डॉ. प्रमोद कुमार सिंह
सह-आचार्य (संस्कृत विभाग)
मैत्रेयी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

सारांश

संस्कृतव्याकरण एवं व्याकरणदर्शन का क्षेत्र अतीव प्राचीन, विशद एवं दार्शनिक चिन्तन से समन्वित है। नाम, आख्यात, उपसर्ग, निपात, क्रिया, लिङ्ग, वचन, विभक्ति आदि मूलतत्त्वों पर प्राचीनकाल से ही तत्त्वचिन्तन आरम्भ हो चुका था। यास्क ने पूर्वाचार्यमतों सहित उपसर्ग एवं नामशब्द का निरुक्त में विवेचन किया, जबकि स्फोटायन एवं औदुम्बरायण को शब्ददर्शन के आदिप्रवर्तक आचार्य माने जाते हैं। कात्यायन एवं पतञ्जलि ने पाणिनीय व्याकरण को दार्शनिक अधिष्ठान प्रदान किया। तदनन्तर भर्तृहरि ने *वाक्यपदीय* के माध्यम से व्याकरणदर्शन की विविध जिज्ञासाओं एवं सिद्धान्तों का गम्भीर निरूपण किया। वृषभदेव, पुण्यराज, हेलाराज, धर्मपाल, नागेशभट्ट आदि की टीकापरम्परा इस परम्परा को समृद्ध करती है।

स्वतंत्र भाषादर्शन ग्रन्थों में मण्डनकृत *स्फोटसिद्धि*, भरतकृत *स्फोटसिद्धि*, भट्टोजिकृत *शब्दकौस्तुभ*, *वैयाकरणसिद्धान्तकारिका*, *प्रौढमनोरमा*, कौण्डभट्टकृत *वैयाकरणभूषण*, नागेशकृत *सिद्धान्तमञ्जूषा*, *स्फोटवाद*, एवं जगदीशकृत *शब्दशक्तिप्रकाशिका* विशिष्ट स्थान रखते हैं। मण्डनमिश्रकृत *स्फोटसिद्धि*, *वाक्यपदीय* के सिद्धान्तों का अनुपूरक ग्रन्थ है, जिसमें शब्ददर्शन की समस्याओं का समाधान एवं नवीन प्रतिपादन प्राप्त होता है।

अतः प्रस्तुत शोधप्रबन्ध का लक्ष्य व्याकरणदर्शन की परम्परा तथा मण्डनमिश्रकृत अवधारणाओं एवं सिद्धान्तों का समीक्षात्मक विवेचन प्रस्तुत करना है।

कूटशब्द – व्याकरणदर्शन, स्फोट, दार्शनिकग्रन्थ, शब्दब्रह्म, मण्डनमिश्र, स्फोटसिद्धि।

©Indira Gandhi National Open University

प्रस्तावना

सकल विद्याओं का आदि एवं मूल स्रोत वेद तथा वैदिक वाङ्मय ही हैं; अतः संस्कृत व्याकरणदर्शन का उद्गम भी वेदों में निहित है एवं उसका आधार वेद ही हैं। वैदिक साहित्य में भाषा, उससे सम्बद्ध व्याकरण तथा व्याकरणदर्शन के विविध पक्षों का सम्यक् एवं व्यापक उल्लेख उपलब्ध होता है, साथ ही उन पर गम्भीर तत्त्वचिन्तन भी परिलक्षित होता है। वाक्यपदीय के ब्रह्मकाण्ड में भाषादर्शन से सम्बद्ध एक दार्शनिक पद्य द्रष्टव्य है -

वागेवार्थं पश्यति वागेवार्थं ब्रवीति वागेवार्थं निहितं सन्तनोति ।

वाच्येव विश्वं बहुरूपं निबद्धं तदेतदेकं प्रविभज्योपभुङ्क्ते ॥[1]

व्याकरण का उल्लेख मुण्डकोपनिषद् में अपराविद्या के रूप में हुआ है - **तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं छन्दो ज्योतिषामिति ।**[2] यजुर्वेद के अनुसार प्रजापति ने रूपों में सत्य व अनृत (स्फोट व ध्वनि) का व्याकरण तथा सत्य में अश्रद्धा का उपदेश दिया –

दृष्ट्वा रूपे व्याकरोत् सत्यानृतेप्प्रजापतिः।

अश्रद्धामनृते दधाच्छ्रद्धां सत्ये प्रजापतिः ॥[3]

इसी प्रकार व्याकरणदर्शन का उत्स भी वैदिक साहित्य में सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है - **त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां आ विवेश ।**[4] आदि मन्त्रों के रूप में वर्णन तथा वाणी के चार भागों की कल्पना, इसकी वर्णन प्रौढता के प्रतीक हैं। भारतीय संस्कृति के आधारग्रन्थ ऋग्वेद है, जिसके एक मन्त्र में व्याकरणदर्शन सम्बन्धित लोक में प्रचलित चतुर्विध वाणी की कल्पना दार्शनिक चिन्तन की पराकाष्ठा है –

चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः ।

गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्याः वदन्ति॥[5]

तात्पर्य यह है कि, लोक में प्रचलित वाक् चार प्रकार के हैं (परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी)। और इस सम्पूर्ण वाक् के पद चार प्रकार हैं, जिन्हें मेधावी मनीषी ब्राह्मण जानते हैं। इन चार प्रकार के पदों में से तीन प्रकार के पद गुहा में स्थापित होने के कारण प्रकाशित

---

[1] वाक्यपदीय (स्वोपज्ञवृत्ति), १.११८
[2] मुण्डकोपनिषद्, १.५
[3] शुक्लयजुर्वेद, १९.७७
[4] ऋग्वेद, ५.५३.३
[5] ऋग्वेद, १.१६४.४२

©Indira Gandhi National Open University

नहीं होते, किन्तु वाणी के चतुर्थ भाग का प्रयोग मनुष्य करते हैं। वहीं ऋग्वेद में ही मानवों में समाहित महान् शब्दवृषभ का विलक्षण वर्णन इस प्रकार किया गया है –

चत्वारि श्रृंगा त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।

त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां आविवेश॥[6]

गोपथ ब्राह्मण में व्याकरणिक तत्वों पर दार्शनिक चिन्तन इस प्रकार हुआ है – **ओङ्कारं पृच्छामः को धातुः, किं प्रातिपदिकम्, किं नामाख्यातम्, किं लिङ्गम्, किं वचनम्, का विभक्तिः, कः प्रत्ययः इति।**[7]

अतः यह तथ्य निर्विवाद रूप से प्रतिपादित होता है कि वाक्-विचार अथवा व्याकरणसम्बद्ध दार्शनिक चिन्तन की प्रारम्भिक अभिव्यक्ति ऋग्वेदादि वैदिक ग्रन्थों में उपलब्ध होती है। विशेषतः ऋग्वेद के प्रथम, चतुर्थ एवं दशम मण्डलों में भाषादर्शन सम्बन्धी चिन्तन अत्यन्त प्रौढ़ता एवं सूक्ष्मता के साथ उद्भासित हुआ है। इस प्रकार यह स्पष्टतः प्रतिपाद्य है कि व्याकरणदर्शन का आदि-स्रोत ऋषि-द्रष्टाओं के मानस से प्रसूत वैदिक साहित्य ही है, जिसे परम्परागत पद्धति से ऋषियों एवं आचार्यों ने आत्मसात् किया तथा स्वकीय तर्क-वितर्कों द्वारा उसका विकास एवं परिष्कार सम्पन्न किया।

इस प्रकार यह तथ्य भी प्रत्यक्ष होता है कि वैदिक काल से प्रारम्भ होकर ब्राह्मण, उपनिषद् एवं महाकाव्य-युग तक आते-आते व्याकरणशास्त्र का सुव्यवस्थित एवं गम्भीर दार्शनिक विकास सम्पन्न हो चुका था। पाणिनि एवं यास्क द्वारा प्रतिपादित आचार्यों के मतों एवं उनके उद्धरणों से यह स्पष्ट संकेत प्राप्त होता है कि इनसे पूर्व भी वैयाकरणाचार्यों की एक समृद्ध एवं सुगठित परम्परा विद्यमान थी, जिन्होंने स्फोट, शब्द-नित्यत्व–अनित्यत्व, नाम–आख्यात–उपसर्ग–निपात, पदार्थ (जाति–व्यक्ति), तथा धात्वर्थक सिद्धान्तादि दार्शनिक विषयों पर सूक्ष्म एवं गूढ़ चिन्तन प्रस्तुत किया था। यास्क ने स्वयं षड्भावविकार, नाम–आख्यात–उपसर्ग–निपात, शब्द-नित्यत्व–अनित्यत्व तथा शब्द का सूक्ष्म एवं व्यापक (स्फोटात्मक) स्वरूप जैसे विषयों पर विशद विवेचन किया है। उन्होंने स्फोटायन, औदुम्बरायण आदि प्राचीन शाब्दिक आचार्यों का नामोल्लेख करते हुए श्रद्धापूर्वक स्मरण किया है, तथा अन्य अज्ञाताचार्यों को भी "एकेषाम्" इत्यादि पदों द्वारा संकेतित किया है।

युधिष्ठिर मीमांसक ने पाणिनि-पूर्ववर्ती २६ वैयाकरणाचार्यों का उल्लेख किया है, जिनमें १६ आचार्य पाणिनीय अष्टाध्यायी में अनुल्लिखित हैं तथा १० आचार्य

---

[6] ऋग्वेद, ४.५८.३

[7] गोपथ ब्राह्मण, १.२४

©Indira Gandhi National Open University

उसमें उल्लिखित हैं। इन प्राचीन आचार्यों में व्याडि तथा स्फोटायन विशेषतः दार्शनिक चिन्तन के क्षेत्र में प्रसिद्ध हैं। प्रमुख वैयाकरणाचार्यों की दार्शनिक परम्परा में स्फोटायन, औदुम्बरायण, पाणिनि, व्याडि, वाजप्यायन, कात्यायन, पतञ्जलि, वसुरात, भर्तृहरि, मण्डनमिश्र, भट्टोजिदीक्षित, कौण्डभट्ट, नागेशभट्ट तथा जगदीश आदि शब्दतत्त्वविद्वान् अपने विशिष्ट रचनात्मक कौशल के द्वारा अग्रणी स्थान के अधिकारी हैं।

अतः यह निर्विवाद रूप से स्पष्ट होता है कि व्याकरणदर्शन की परम्परा अत्यन्त विस्तीर्ण, गम्भीर एवं दार्शनिक समृद्धि से युक्त है, जिसका क्रमबद्ध विवेचन निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जाता है—

व्याकरणदर्शन की परम्परा

स्फोटायन

व्याकरणदर्शन की परम्परा में प्रथम आचार्य स्फोटायन हैं। पाणिनीयाष्टाध्यायी में स्फोटायन आचार्य को प्रस्तुत सूत्र द्वारा उद्धृत किया गया है - **"अवङ् स्फोटायनस्य"**[8] अर्थात् एङन्त 'गो' पद से 'अच्'(स्वर) परे हो तो 'गो' को 'अवङ्' आदेश होता है, स्फोटायन आचार्य के मत में, अर्थात् विकल्प से। पदमञ्जरीकार हरदत्त ने स्फोटायन शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है - **"स्फोटोऽयनं परायणं यस्य सः स्फोटायनः स्फोटप्रतिपादनपरो वैयाकरणाचार्यः । ये त्वौकारं पठन्ति ते नडादिषु अश्वादिषु वा (स्फोटशब्दस्य) पाठं मन्यन्ते ।"**[9] अतः इस प्रकार स्फोटायन "स्फोटतत्व" के आदि प्रवर्त्तक आचार्य प्रतीत होते हैं। किन्तु स्फोटायन आचार्य का कोई ग्रन्थ प्राप्त नहीं होता है।

समय - युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार स्फोटायन आचार्य का समय ३२०० वि. पूर्व माना गया है।[10]

औदुम्बरायण

व्याकरणदर्शन की परम्परा में द्वितीय आचार्य औदुम्बरायण हैं। यास्क के अनुसार इनके मत में इन्द्रियातिरिक्त शब्द की सत्ता को मानने में कोई प्रमाण नहीं – अर्थात् शब्द अनित्य हैं –

---

[8] अष्टाध्यायी, ६.१.१२३
[9] काशिका (पदमञ्जरी), ६.१.१२३
[10] संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास (द्वितीय भाग), पृ.-३९५

Volume 4, Issue 1, 2025, p. 23-37, ISSN 2583-6331
©Indira Gandhi National Open University

इन्द्रियनित्यं वचनमौदुम्बरायणः।[11] किन्तु भरतमिश्र व भर्तृहरि इन्हें शब्दनित्यत्ववादी मानते हैं। सम्प्रति औदुम्बरायणकृत कोई ग्रन्थ प्राप्त नहीं है।

औदुम्बरायण शब्द में श्रुत तद्धित प्रत्यय से विदित होता है कि औदुम्बरायण आचार्य के पिता का नाम उदुम्बर था। उदुम्बर शब्द पाणिनि के नडादिगण में पठित है। उससे फक् (=आयन) प्रत्यय होकर औदुम्बरायण पद निष्पन्न होता है।

समय - युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार औदुम्बरायण आचार्य का समय ३१०० वि.पूर्व माना गया है।[12]

पाणिनि

पाणिनि निर्विवाद रूप से दार्शनिक परम्परा के प्रमुखतम आचार्य हैं। पश्चाद्वर्ती वैयाकरणों ने अष्टाध्यायी का परिबृंहण अपने ग्रन्थों में किया है एवं पाणिनीय मत का अनुमोदन अपने दार्शनिक चिन्तन में किया है। वस्तुतः व्याकरणदर्शन की एक विस्तृत पृष्ठभूमि पाणिनि ने स्वयं तैयार कर दी थी। पाणिनीयाष्टाध्यायी में प्रयुक्त विभाषा (न वेति विभाषा), पदविधि (समर्थः पदविधिः), आदेश (आदेश प्रत्यययोः), विप्रतिषेध (विप्रतिषेधे परं कार्यम्), उपमान, लिङ्ग, क्रियातिपत्ति, कालविभाग, वीप्सा, प्रत्ययलक्षण, भावलक्षण, शब्दार्थप्रकृति जैसे शब्द इस तथ्य के पुष्ट प्रमाण हैं।

परिचय व समय – पाणिनि के अनेक नाम प्राप्य हैं - पाणिन, पाणिनि, दाक्षीपुत्र, शालङ्कि, शालातुरीय व आहिक। इनकी माता का नाम दाक्षी था, अतएव पाणिनि दाक्षीपुत्र कहलाए तथा कुछ आचार्यों के मत में संग्रहकार व्याडि (दाक्षायण) इनके मातृबन्धु बताये गये हैं। इनका जन्मस्थान शलातुर ग्राम बताया गया है। पाणिनि का समय युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार २९०० वि.पूर्व है, किन्तु पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार ७वीं शती ई.पू. से लेकर ४थी शती ई. पू. माना गया है।[13]

वाजप्यायन

वाजप्यायन आचार्य का कोई ग्रन्थ प्राप्त नहीं है। किन्तु पतञ्जलि ने ‘सरूपाणामेकशेष एकविभक्तौ[14]’ के भाष्य पर ‘आकृत्याभिधानाद्वा’ कहकर वाजप्यायन का उल्लेख

[11] निरुक्त, १.२
[12] संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास (द्वितीय भाग), पृ.-३९६
[13] संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास (प्रथम भाग), पृ-२२१,२०५
[14] अष्टाध्यायी, १.२.६४

Volume 4, Issue 1, 2025, p. 23-37, ISSN 2583-6331
©Indira Gandhi National Open University

जातिशक्तिवादी के रूप में किया है । अतः प्रतीत होता है कि वाजप्यायन नामक कोई शब्दविद हुए थे ।

व्याडि (दाक्षायण)

आचार्य व्याडि अपरनाम दाक्षायण का निर्देश पाणिनीय सूत्रपाठ में प्राप्त नहीं होता है। किन्तु व्याडि नाम के आचार्य पाणिनि के समय के आसपास ही हुए थे । उन्होंने 'संग्रह' नामक व्याकरणदर्शन का ग्रन्थ लिखा था । नाट्यशास्त्रकार भरतमुनि ने 'संग्रह' की परिभाषा करते हुए कहा कि - सूत्र और भाष्य प्रणाली से अत्यन्त विस्तारपूर्वक विवेचित विषयों के संक्षेपतः निबन्धन को ही विद्वानों ने 'संग्रह' नाम से जाना है । यहाँ सूत्र पद से 'लक्षण' तथा भाष्य से उसके विवेचन रूप 'परीक्षा' का ग्रहण होता है –

विस्तरेणोपदिष्टानामर्थानां सूत्रभाष्ययोः ।
निबन्धो यः समासेन संग्रहं तं विदुर्बुधाः ॥[15]

'संग्रह' के उद्धरण अन्य विविध ग्रन्थों में भी प्राप्त होते हैं, महाभाष्यकार पतञ्जलि कहते हैं- **'शोभना खलु दाक्षायणस्य संग्रहस्य कृतिः'।[16]** भर्तृहरि ने संग्रह की व्यापकता का उल्लेख किया है- 'चतुर्दश सहस्राणि वस्तूनि परीक्षितानि अस्मिन् संग्रह ग्रन्थे'।[17] इसका परिमाण एकलक्ष श्लोकात्मक था । पतञ्जलि इन्हें द्रव्यशक्तिवादी भी कहते हैं । महाभाष्य तथा वाक्यपदीय में ऐसे संकेत प्राप्त होते हैं कि कात्यायन, पतञ्जलि व भर्तृहरि के व्याकरण-दार्शनिक चिन्तन का आधार यही ग्रन्थ था ।

समय - युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार व्याडि का समय २९०० वि.पूर्व है ।[18]

कात्यायन

कात्यायन पाणिनि तन्त्र के प्रसिद्ध वार्त्तिककार हैं । इन्होंने व्याकरणदर्शन को लोकजीवन से सम्बद्ध किया । इनके द्वारा उद्भावित दार्शनिक चिन्तन को पतञ्जलि एवं बाद में भर्तृहरि ने विकसित किया । पतञ्जलि ने इनके वार्त्तिकों पर महाभाष्य की रचना की । वार्त्तिक की परिभाषा करते हुए कहा गया है कि, जिसमें उक्त, अनुक्त तथा दुरुक्त विषयों का विचार किया जाता है, उस ग्रन्थ को वार्त्तिकज्ञ मनीषी वार्त्तिक कहते हैं –

---

15 नाट्यशास्त्र, ६.९

16 महाभाष्य, २.३.६६

17 महाभाष्य (दीपिका), पृ.-२३

18 संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास (प्रथम भाग), पृ.- १४४

©Indira Gandhi National Open University

उक्तानुक्तदुरुक्तानां चिन्ता यत्र प्रवर्तते ।
तं ग्रन्थं वार्त्तिकं प्राहुर्वार्त्तिकज्ञा मनीषिणः ॥[19]

व्याकरणदर्शन के चिन्तन के क्रम में कात्यायन का प्रथम वार्त्तिक प्रसिद्ध है – **'सिद्धे शब्दार्थसम्बन्धे'**।[20]

कात्यायन ने उत्सर्ग, अपवाद, विधि, प्रतिषेध, निपातन, स्थानी, आदेश, लिङ्ग, नियम आदि सामान्य-विशेष प्रकारों से अपनी व्याख्यान पद्धति में दार्शनिकता का समावेश किया है।

स्थान व समय – महाभाष्य पस्पशाह्निक में पठित 'प्रियतद्धिता हि दाक्षिणात्याः' से विदित होता है कि वार्त्तिककार कात्यायन दाक्षिणात्य थे । कात्यायन का समय युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार २९००-३००० वि.पूर्व है ।[21] किन्तु पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार ३५० ई. पू. लगभग माना गया है ।

पतञ्जलि

पाणिनीय व्याकरण तात्त्विक नियमों एवं सिद्धान्तों में विरोध उत्पन्न होने पर त्रिमुनियों में पतञ्जलि को प्राधान्य है – **यथोत्तरं मुनीनां प्रामाण्यम् ।**[22] विष्णुधर्मोत्तर के तृतीय खण्ड के चतुर्थ अध्याय में भाष्य का लक्षण इस प्रकार लिखा है –

सूत्रार्थो वर्ण्यते यत्र वाक्यैः सूत्रानुसारिभिः ।
स्वपदानि च वर्ण्यन्ते भाष्यं भाष्यविदो विदुः ॥

तदनुसार, जिस ग्रन्थ में सूत्रार्थ, सूत्रानुसारी वाक्यों (वार्त्तिकों) तथा अपने पदों का व्याख्यान किया जाता है, उसे भाष्य को जानने वाले मनीषी 'भाष्य' कहते हैं । पतञ्जलिकृत महाभाष्य की उपमा सागर से दी जाती है । महाभाष्य 'संग्रह' का प्रतिनिधिकल्प है और सभी न्यायबीजों का अधिष्ठान है "संग्रहप्रतिकञ्चुके"।[23] जो कुछ वार्त्तिकों में है, वह सब तो महाभाष्य में है, बहुत कुछ अन्य भी है इसलिए महाभाष्य व्याकरण और व्याकरणदर्शन का आकर ग्रन्थ है । इसमें वर्ण, शब्द, आकृतिपदार्थ, गुणपदार्थ, लिङ्ग, वचन, सङ्ख्या, वृत्ति, वाक्य, वाक्यार्थ आदि पर प्रचुरता में चिन्तन है ।

स्थान व समय – कुछ ग्रन्थकार पतञ्जलि को गोनर्द देशीय मानते हुए वर्त्तमान गोण्डा जनपद के आसपास का माना है, किन्तु कुछ विद्वान् एक गोनर्द कश्मीर में होने से कश्मीरीय सिद्ध

---

[19] पराशर उपपुराण
[20] महाभाष्य (पस्पशाह्निक)
[21] संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास (प्रथम भाग), पृ.- ३३२
[22] नागेश (प्रदीपोद्योत)
[23] वाक्यपदीय, २.४८४

©Indira Gandhi National Open University

करते हैं । महाभाष्यकार पतञ्जलि का समय युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार १९००-२००० वि.पूर्व है ।[24] किन्तु पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार १५० ई. पू. लगभग माना गया है ।

वसुरात

भर्तृहरि के गुरु वसुरात ने विभिन्न दर्शनों के आधार पर व्याकरणदर्शन की व्याख्या आरम्भ की थी, इन्हीं की प्रेरणा से भर्तृहरि ने वाक्यपदीय की रचना की । सम्भवतः वसुरात व्याडिकृत संग्रह से प्रभावित थे और भर्तृहरि भी थे, अतः भर्तृहरि ने वाक्यपदीय को स्वयं 'आगमसंग्रह' कहा है और उसकी मान्यताओं को अपने गुरु की देन माना है ।

समय – रामसुरेश त्रिपाठीकृत "संस्कृत व्याकरण दर्शन" के अनुसार वसुरात का समय लगभग ४०० ईस्वी माना है ।[25]

भर्तृहरि

मुनित्रय व समकालीन आचार्यों के पश्चात् महान् दार्शनिक भर्तृहरि (५वीं शती ई.) का आविर्भाव हुआ। इन्होंने भाषादर्शन के चिन्तन को शिखर तक पहुँचाया। वाक्यपदीय के द्वितीय काण्ड में व्याकरणमहाभाष्य का वैशिष्ट्य प्रतिपादित करते हुए कहा गया है कि-

कृतेऽथ पतञ्जलिना गुरुणा तीर्थदर्शिना ।
सर्वेषां न्यायबीजानां महाभाष्येनिबन्धने॥[26]

भाषा – चिन्तन सम्बन्धी प्रायः सभी विषयों का गम्भीर विवेचन वाक्यपदीय में प्राप्त है। भर्तृहरि भारतीय परम्परा में ही नहीं अपितु समस्त विश्व में भाषादर्शन के शिखर-पुरुषों में से अन्यतम हैं। शब्दशास्त्र को विकसित व दार्शनिक सम्प्रदाय के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय इन्हीं को है । भर्तृहरि की चिन्तन प्रौढ़ता का तत्वमात्र निर्दर्शन इस प्रकार है –

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्वं यदक्षरम् ।
विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः ॥[27]

[24] संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास (प्रथम भाग), पृ.- ३५६
[25] संस्कृत व्याकरण दर्शन, पृ.-१४
[26] वाक्यपदीय, २.४७७
[27] वाक्यपदीय, १.१

©Indira Gandhi National Open University

अर्थात् शब्दतत्त्व अनादिनिधन (जिसकी न शुरुआत है, न अंत) और अक्षर (क्षरित न होने वाला) है। वही ब्रह्म है। यह अर्थ रूप में विवर्तित होता है, जिससे संसार की प्रक्रिया या रचना होती है। और भी-

न सोऽस्ति प्रत्ययो लोके यः शब्दानुगमादृते।
अनुविद्धमिव ज्ञानं सर्वं शब्देन भासते॥[28]

तदनुसार, संसार में ऐसा कोई ज्ञान नहीं, जो शब्द का अनुगमन किये बिना सम्भव हो पाता हो। जितना भी ज्ञान यहाँ प्राप्त होता है, वह शब्द से अनुविद्ध या शब्द में पिरोया होकर ही भासित होता है।

परिचय व समय

महान्तः कवयः सन्तु महान्तः सन्तु पण्डिताः।
महाकविर्महाविद्वानेको भर्तृहरिर्मतः॥[29]

तदनुसार, महान् कवि हुए होंगे, महान् पण्डित भी हुए होंगे, पर महाकवि और महाविद्वान् तो अकेले भर्तृहरि ही माने गये हैं। सम्प्रति भर्तृहरि कौन थे ? उनके माता-पिता का क्या नाम था, कुछ भी स्पष्ट ज्ञात नहीं है। टीकाओं में तथा अन्यत्र उल्लिखित कथाएँ उन्हें राजा, कहीं विक्रमादित्य और कहीं शूद्रक का भाई दर्शाती हैं, जो संसार का परित्याग कर देता है और अपने जीवन के आखिर में संन्यासी बन ज्ञाता है। पुण्यराज ने वाक्यपदीय (२.४८४) की टीका में भर्तृहरि के गुरु का नाम वसुरात बताया है – **तत्र भगवता वसुरातगुरुणा ममायमागमः संज्ञाय वात्सल्यात् प्रणीतः।**[30] भर्तृहरि का काल भी विवादास्पद है। युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार भर्तृहरि का समय ४०० वि.पू. माना गया है।[31] एन्साइक्लोपीडिया ऑफ़ इण्डियन फिलॉसोफ़ीज, VOL.-5 में भर्तृहरि का समय ४५०-५१० ई. बताया गया है।[32] प्रसिद्ध बौद्ध चीनी तीर्थयात्री इत्सिंग के अनुसार भर्तृहरि का समय ६५० ई. के कुछ पूर्व माना गया है।[33]

इसके पश्चात् व्याकरणदर्शन के विकास की धारा में दो परम्पराएँ हैं, एक व्याकरणदर्शन के ग्रन्थों की टीका या वृत्ति परम्परा और दूसरी स्वतंत्र ग्रन्थ परम्परा। उपर्युक्त दोनों

---

[28] वाक्यपदीय, १.१२३
[29] भर्तृहरिकृत वाक्यपदीय, स्रोत अप्राप्य
[30] वाक्यपदीय, २.४८४
[31] संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहास (प्रथम भाग), पृ.-३८५
[32] Encyclopedia of Indian Philosophies Vol-5, Page no.- १२१
[33] संस्कृत साहित्य का इतिहास (उमाशङ्कर शर्मा 'ऋषि'), पृ.-५६४

©Indira Gandhi National Open University

परम्पराओं ने सम्मिलित रूप में व्याकरणदर्शन के विकास में महत् योगदान दिया और इसे एक स्थापित उच्च शिखर पर पहुँचाया।

टीका या वृत्ति परम्परा

व्याकरणदर्शन की टीका या वृत्ति परम्परा में सर्वप्रथम महाभाष्यदीपिकाकार भर्तृहरि (४५०-५१० ई.), पश्चात् वाक्यपदीय के टीकाकार वृषभदेव (५५० ई.), धर्मपाल (६ठीं शती), पुण्यराज (९०० ई.), व हेलाराज (१००० ई.) हैं। तथा प्रदीपकार कैय्यट (१०९० ई.), स्फोटसिद्धि के गोपालिकाटीकाकार (१६वीं शती), प्रदीपोद्योतकार नागेश (१७वीं-१८वीं शती) आदि मुख्य हैं, जिन्होंने व्याकरण दर्शनकारों द्वारा स्थापित दार्शनिक चिन्तन को प्रकट करते हुए अपने मन्तव्यों से इसको विकसित किया।

स्वतंत्र दार्शनिक ग्रन्थ

व्याकरणदर्शन की स्वतंत्र दार्शनिक ग्रन्थ परम्परा में स्फोटसिद्धिकार मण्डनमिश्र जिन्हें भर्तृहरिकृत वाक्यपदीय का पूरक कहा जाता है। स्फोटसिद्धिकार भरतमिश्र एवं तदनन्तर सोलहवीं शताब्दी के वैयाकरण भट्टोजिदीक्षित हैं जिन्होंने शब्दकौस्तुभ, वैयाकरणसिद्धान्तकारिका व प्रौढमनोरमा जैसे अद्भुत व्याकरण दार्शनिक ग्रन्थ लिखे। सत्रहवीं शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य न्याय-शास्त्र के मर्मज्ञ वैयाकरण दार्शनिकों का पदार्पण हुआ, जिनमें कौण्डभट्ट, नागेशभट्ट, जगदीश भट्टाचार्य, कृष्णमित्र, भरतमिश्र आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। कौण्डभट्ट ने वैयाकरणभूषण व वैयाकरणभूषणसार लिखा, नागेशभट्ट ने वैयाकरणसिद्धान्तमञ्जूषा, वैयाकरणसिद्धान्तलघुमञ्जूषा, वैयाकरणसिद्धान्तपरमलघुमञ्जूषा एवं स्फोटवाद लिखे, जगदीश भट्टाचार्य की शब्दशक्तिप्रकाशिका प्रसिद्ध है।

इसके पश्चात् १९वीं शती का उत्तरार्ध व २०वीं शताब्दी के अन्य आधुनिक विद्वानों का योगदान भी विशेषरूप से उल्लेखनीय है, जिसमें गिरिधर भट्टाचार्य, कृष्णभट्ट, रसभनन्दि, गोपीनाथ, प्रो.के. एस. ए. अय्यर, पं. अम्बिकाप्रसाद उपाध्याय तथा पं. रामाज्ञा पाण्डेय आदि विद्वानों की रचनाएँ भी महत्वपूर्ण व श्लाघनीय हैं।

मण्डनमिश्र

भारतीय दर्शन-चितन परम्परा में आचार्य मण्डनमिश्र का स्थान सर्वथा सम्माननीय एवं श्लाघनीय है। शङ्करदिग्विजय आदि ग्रन्थों के अनुसार मण्डनमिश्र भट्ट कुमारिल के शिष्य थे। मण्डनमिश्र के गृहद्वार पर कीराङ्गनाएँ भी वेद के स्वतः प्रमाण पर विवाद करती थीं।

©Indira Gandhi National Open University

शङ्करदिग्विजय में लिखा है कि किसी पनिहारी से जब शङ्कर ने मण्डनमिश्र के घर का पता पूँछा तो उसने उत्तर में कहा –

स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं कीराङ्गना यत्र गिरं गिरन्ति ।
द्वारस्थनीडा तरुसन्निपाते जानीहि तन्मण्डनमिश्रधाम ॥[34]

किन्तु मण्डनमिश्र के गृहस्थान के विषय में संस्कृत व्याकरणशास्त्र के इतिहास में जो स्रोत बताया गया है उसके अनुसार इन्हें माहिष्मती (म.प्र.) का बताया गया है जबकि अन्य स्रोतों जैसे "मण्डन-ग्रन्थावली" में अनेक तर्कयुक्त बातों के साथ मण्डनमिश्र को "बिहार स्थित सहरसामण्डलान्तर्गत महिषी" का होना सिद्ध किया गया है ।[35] मण्डनमिश्र उन प्रमुख भारतीय मनीषियों में एक हैं जिन्होंने दर्शन या भारतीय विद्या के किसी एक शाखा को ही पल्लवित व पुष्पित नहीं किया अपिच कई शाखाएँ इनसे लाभान्वित हुईं ।

मूलरूप से मीमांसक होने के बावजूद इनका रूपान्तरण अद्वैत वेदान्त में होना एवं 'ब्रह्मसिद्धि' नामक अद्वैत कृति का इनके द्वारा रचित होना इस बात को प्रमाणित भी करती है । शङ्करप्राक् वेदान्त के वे प्रथम आचार्य हैं जिन्होंने अन्य ज्ञेय विषयों को भी अपने चिन्तन का आधार बनाया। शङ्कर के पश्चात् अद्वैत के जिन दो प्रस्थानों (भामती एवं विवरण) का उद्भव हुआ उनमें भामती प्रस्थान का उपजीव्य कदाचित् मण्डन ही थे । इसके अतिरिक्त इन्होंने वैयाकरण दार्शनिकों के अनेक अनसुलझी समस्याओं का समाधान भी अपने सुप्रसिद्ध रचना 'स्फोटसिद्धि' में किया है ।

मण्डन की काल मीमांसा

कुप्पुस्वामी शास्त्री ने ब्रह्मसिद्धि की भूमिका में मण्डन का समय ६१५ – ६९५ ईस्वी के मध्य माना है । युधिष्ठिर मीमांसक के अनुसार मण्डन का समय वि.सं. ६९५ से पूर्व माना गया है । एलेन राइट थ्रैशर (द अद्वैत वेदान्त ऑफ़ ब्रह्मसिद्धि) के अनुसार मण्डन का समय ६०० – ७०० ईस्वी के मध्य माना गया है । म०म०पी०वी० काणे के अनुसार मण्डन का काल ६९० – ७१० ईस्वी के मध्य माना गया है ।

इस प्रकार उपर्युक्त मन्तव्यों से स्पष्ट है कि मण्डनमिश्र का काल ७वीं शती से ८वीं शती का पूर्वार्ध माना जा सकता है ।

मण्डनमिश्र का सृष्टि-संसार

34 शङ्करदिग्विजय, ८.६
35 मण्डन-ग्रन्थावली, पृ.-३४

©Indira Gandhi National Open University

मण्डनमिश्र की छः रचनाएँ प्राप्त होती हैं – मीमांसाऽनुक्रमणिका, भावनाविवेक, विधिविवेक, विभ्रमविवेक, स्फोटसिद्धि (व्याकरणदर्शन सम्बन्धी ग्रन्थ) एवं ब्रह्मसिद्धि।

मीमांसाऽनुक्रमणिका

मीमांसाऽनुक्रमणिका महर्षि जैमिनि विरचित मीमांसाशास्त्र के अधिकरण सिद्धान्त को संक्षिप्त तथा स्पष्ट रूप से प्रकाशित करने वाला ग्रन्थ है । जिसमें कुल १२ अध्याय हैं । यह कारिकाबद्ध प्रकरण ग्रन्थ है । इसमें मण्डन का मीमांसाविषयक ज्ञान प्रकाशित हुआ है ।

भावनाविवेक

मण्डन का यह ग्रन्थ मीमांसादर्शन के प्रसिद्ध सिद्धान्त भावना की व्याख्या करता है। इसमें कुल ५९ कारिकाएँ हैं ।

विभ्रमविवेक

भ्रान्तिविषयक अख्यातिवाद (सब ज्ञान यथार्थ ही होता है, अयथार्थ नहीं) का खण्डन करके विभ्रमविवेक नामक इस ग्रन्थ में अन्यथाख्यातिवाद का प्रतिपादन किया गया है । इसमें कुल १६२ कारिकाएँ (पूर्वपक्ष में ४५ व उत्तरपक्ष में ११७) हैं

विधिविवेक

यह मुख्यतः एक गद्यात्मक ग्रन्थ है जिसमें मीमांसा के आधारभूत सिद्धान्त विधि, विध्यर्थ, विधिलिङ् आदि पर विचार किया गया है । इसमें कुल ४९ कारिकाएँ हैं ।

ब्रह्मसिद्धि

शंकरपूर्व अद्वैतपरक ग्रन्थों में आचार्य मण्डनकृत ब्रह्मसिद्धि दर्शनजगत् में सर्वाधिक समादरणीय है । यह ग्रन्थ चार काण्डों में विभक्त है – ब्रह्मकाण्ड , तर्ककाण्ड , नियोगकाण्ड तथा सिद्धिकाण्ड ।

©Indira Gandhi National Open University

ग्रन्थ के प्रारम्भिक मंगलाचरण में अक्षरब्रह्म को नमस्कार किया गया है जिससे विदित होता है कि इस ग्रन्थ में भी शब्ददर्शन सम्बन्धी तत्वों का प्रतिपादन हुआ है – आनन्दमेकममृतमजं विज्ञानमक्षरम् ।[36]

स्फोटसिद्धि

स्फोटसिद्धि भाषाविज्ञान या दर्शन अथ च व्याकरणदर्शन को आधार बनाकर लिखा गया ग्रन्थ है, जो स्फोट के स्वरूप की व्याख्या के साथ ही शब्द की नित्यता को प्रस्तुत करता है। वाक्यपदीयकार भर्तृहरि शब्दाद्वैतवादी हैं । शब्दाद्वैत मानने वाले वैयाकरण जगत् को काल्पनिक मानते हैं। उनके मत में जगत् के सारे व्यवहार मिथ्या हैं और स्फोट ही एकमात्र सत्य एवं नित्य है। फलस्वरूप भर्तृहरि के शब्दाद्वैत या स्फोट-विषयक मार्गदर्शक सिद्धान्तों ने मण्डनमिश्र को भी एक व्यापक दृष्टि प्रदान की। यही कारण रहा कि बाद में भर्तृहरि के वाक्यपदीय में प्रतिपादित स्फोट-विषयक सिद्धान्तों को बड़े ही व्यवस्थित रूप में मण्डनमिश्र ने स्फोटसिद्धि में प्रस्तुत किया। जिसके कारण स्फोटसिद्धि नामक ग्रन्थ को वाक्यपदीय का पूरक ग्रन्थ माना जाता है । इसके विपरीत मीमांसक जगत् के पदार्थों की सत्ता वास्तविक मानते हैं। अतएव स्फोटवाद का आश्रय इनके सिद्धान्तों के प्रतिकूल है। ये लोग स्फोटात्मक शब्द की अपेक्षा वर्णनात्मक शब्द को ही नित्य मानते हैं। कुमारिल के अनुसार यदि स्फोट को ही सत्य तथा वर्ण, पद एवं अवान्तर वाक्य को मिथ्या मान लें तो तत्प्रतिपाद्य प्रयोग आदि अनुष्ठानों को भी मिथ्या मानना पड़ेगा। परन्तु मण्डन अपने गुरु के विपरीत स्फोट को ही वास्तविक तत्त्व मानते हैं, जिसका विवर्त अर्थ तथा समस्त जगत् है। ये स्फोटात्मक रूप से शब्द की नित्यता स्वीकार करते हैं। इसी उद्देश्य से इन्होंने वर्णवादियों के विचारों के खण्डनस्वरूप वृत्ति सहित ३७ कारिकाओं वाली ‘स्फोटसिद्धि’ की रचना की है, जिस पर स्वयं इन्होंने स्वोपज्ञटीका भी लिखी।

निष्कर्ष

व्याकरणदर्शन का आदिप्रस्रोत वेद हैं, जिनमें विशेषतः ऋग्वेद के सूक्तों में शब्ददर्शन के तत्त्व समाहित हैं। तत्पश्चात् ब्राह्मण, उपनिषद् एवं महाकाव्य काल में व्याकरण का दार्शनिक विकास सुनियोजित रूप में दृष्टिगोचर होता है। यास्क के निर्वचन, पाणिनि, कात्यायन एवं पतञ्जलि के भाष्यात्मक योगदान से यह परम्परा समृद्ध हुई। पतञ्जलिकृत *महाभाष्य* शब्ददर्शन का स्तुत्य ग्रन्थ है, जिसने भर्तृहरि के *वाक्यपदीय* को व्यापक दृष्टि प्रदान की। *वाक्यपदीय* के टीकाकारों—वृषभदेव, पुण्यराज,

[36] मण्डन-ग्रन्थावली, पृ.-४७

Volume 4, Issue 1, 2025, p. 23-37, ISSN 2583-6331
©Indira Gandhi National Open University

हेलाराज आदि—का योगदान भी अतिशय महत्वपूर्ण रहा। १३वीं-१४वीं शती के अनन्तर नव्य-न्याय प्रभाव से भट्टोजिदीक्षित, कौण्डभट्ट, नागेशभट्ट तथा जगदीशादि विद्वानों के ग्रन्थों में भाषिक क्लिष्टता परिलक्षित होती है। ७वीं शती में मण्डनमिश्र ने अपने गुरुवर कुमारिल के स्फोटनिषेधात्मक तर्कों का खण्डन कर *स्फोटसिद्धि* नामक ग्रन्थ की रचना की, जो *वाक्यपदीय* का दार्शनिक पूरक है। अतः मण्डनमिश्र, शब्दाद्वैत एवं स्फोटविषयक चिन्तन के प्रमुख प्रवर्तक माने जाते हैं।

अतः प्रस्तुत विवेचन व्याकरणदर्शन की परम्परा एवं मण्डनमिश्रकृत सिद्धान्तों का गम्भीर अनुशीलन है।

सन्दर्भ-सूची

मौलिक ग्रन्थ

1. अवस्थी, शिवशङ्कर. व्याख्याता श्रीभर्तृहरि वाक्यपदीयम् (ब्रह्मकाण्ड). वाराणसी: चौखम्बा विद्याभवन, २०१९.

सहायक ग्रन्थ

1. त्रिपाठी, रामसुरेश. संस्कृत व्याकरण-दर्शन. दिल्ली: राजकमल प्रकाशन, १९७२.
2. द्विवेदी, कपिलदेव. अर्थविज्ञान और व्याकरण दर्शन. वाराणसी: विश्वविद्यालय प्रकाशन, २०२१.
3. मिश्र, पङ्कज कुमार. मण्डन-ग्रन्थावली. दिल्ली: विद्यानिधि प्रकाशन, २०२१.
4. मिश्र, रणजीत कुमार. समासशक्ति तथा शब्दशक्ति. दिल्ली: विद्यानिधि प्रकाशन, २०१७.
5. मीमांसक, युधिष्ठिर. संस्कृत व्याकरण शास्त्र का इतिहस, भाग १-३. सोनीपत, हरियाणा: रामलाल कपूर ट्रस्ट, सम्वत् २०३०.
6. वर्मा, सत्यकाम. संस्कृत व्याकरण का उद्भव और विकास. दिल्ली: मोतीलाल बनारसीदास, १९७१.
7. शास्त्री, एस. के. रामनाथ. संपादक आचार्यमण्डनमिश्रविरचिता स्फोटसिद्धिः. मद्रास: मद्रास विश्वविद्यालय, संस्कृत सीरीज - ६, १९३१.

ENCYCLOPEDIA

©Indira Gandhi National Open University

1. HAROLD G. COWARD AND K. KUNJUNNI RAJA, (Eds.). ENCYCLOPEDIA OF INDIAN PHILOSOPHIES, VOl.-V. DELHI: MOTILAL BANARSIDAS, 1990.

शोध आलेख

1. आर्या, रश्मि. "व्याकरणदर्शन का उद्भव एवं उसकी समृद्ध परम्परा." International Journal of Applied Research (२०२१): ६९-७०.

©Indira Gandhi National Open University